International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 24-03-2023, Accepted: 11-04-2023, Published: 26-04-2023
Volume 9, Issue 2, 2023, Page No. 48-49

संत साहित्य और नारी

उषा
पीएचडी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
हिन्दी साहित्य का उदय ''सन्त साहित्य'' से ही हुआ है तथा आज का समय अन्तराल इस साहित्य को धूमिल नहीं कर सकता है निस्सन्देह हमें आज सन्त साहित्य की सहायता भौतिक एवं आध्यात्मिक ज्ञानोपलब्धि के लिए जरूरी है यह साहित्य हमारे जीवन के भौतिक जीवन में शुद्ध आचरण, सामाजिक संतुलन, भावात्मक नियंत्रण, राष्ट्रीय एकता स्थापित करता है।

मूल शब्दः सन्त साहित्य, साहित्य के निर्माण, स्त्रीयों के प्रति संतों का दृष्टिकोण

'भक्ति काल' में जैसे भक्त संतों की बाढ़ सी आ गई थी। इस काल के कवियों में जहाँ अनेक प्रकार की विभिन्नता थी वहाँ कुछ समान भावनाएँ भी पाई जाती है जिसे लक्ष्य करके इस काल का नाम 'भक्ति काल' रखा गया। भक्ति काल के आरम्भ में समाज में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी थी जिनसे प्रभावित होकर काव्य का क्षेत्र बदल गया। मुस्लिम प्रभुत्व के स्थापित हो जाने पर हिन्दी साहित्य में वीगाथा कालीन भावना लुप्त हो गई और विधर्मियों के अत्याचार बढ़ने लगे। अब काव्य का क्षेत्र राजदरबार से हटकर विरक्त साधुओं की कुटियों में आश्रय लेने लगा। अब आश्रयदाताओं के गुणगान के स्थान पर देश का समस्त व्यक्ति भगवान के कीर्तिगान से ध्वनित हो उठा था। अतः भक्तिकाल के सन्तों ने जिस भी साहित्य की रचना की वह 'सन्त साहित्य' के नाम से विख्यात हो गया। इस काल के प्रमुख कवि सूर, तुलसी, जायसी, कवीर है इनके अतिरिक्त नानक, दादू, मीरा, सुन्दरदास, रैदास, मलूकदास, भीखा साहब आदि प्रसिद्ध सन्त हुए।

सन्त साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि आदिकाल से ही देखने को मिल जाती है तात्कालीन परिस्थिति राजनैतिक हलचल, आडम्बर, पक्षपात आदि के कारण केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग को छोड़कर प्रत्येक वर्ग बहुत बुरी तरह से शोषित तथा पीड़ित था। तथा भक्तिकाल तक आते–आते बौद्ध धर्म का पतन आरम्भ हो चुका था। ब्राह्मणवाद का बोलबाला था, साधन, मुक्ति, पूजा–पाठ, वैभव, शक्ति को इन लोगों ने अपनी संपति बना लिया था यह साधारण जन के लिए नहीं था उनका जीवन केवल रोटी चलाने के लिए मेहनत करना था तथा उसको भी यह ब्राह्मण करके रूप में उन से ले लेते थे। इन्होंने जनता को भेड़–बकरी बना रखा था और इस प्रकार उसके आत्मबल, आत्मविश्वास और पुरुषार्थ का हरण किया था। उसी समय कबीर जैसे अनेक महात्मा हुए जिन्होंने अपनी व्यक्तिगत साधना के बल पर धार्मिक और सामाजिक क्रांति की। इनमें हिन्दी साहित्य के आदि कवि सरहपा, लुणिपा, करेठिपा आदि भी मुख्य थे जिन्होंने परम्परागत काव्य भाषा संस्कृत और पालि त्याग कर जनभाषा अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी में अपनी वाणी लिखी। ये संत मूलतः वज्रयानी सम्प्रदाय से प्रभावित थे इन्हीं की परम्परा अथवा मार्गदर्शन में आगे चलकर 'सन्त साहित्य' की रचना हुई।

आगे दी गई टिप्पणियों के आधार हम कहे सकते हैं कि आदिकाल में वीरगाथा काव्य का धीरे–धीरे सन्त साहित्य में परिवर्तन हुआ। सन्त साहित्य के निर्माण के पीछे अनेक कारण थे जैसे– बौद्ध धर्म का पतन, ब्राह्मणवाद का स्वयं को श्रेष्ठ मानना, मुस्लिमों का आगमन तथा निम्न वर्ग की स्थिति पहले से अधिक दरिद्रता में होना किन्तु आदिकाल से भक्तिकाल तक के सन्तों ने जो कि ज्यादातर निम्नवर्ग के थे उनहोंने 'स्त्री' को अपने साहित्य में वह आदर नहीं दिया, इसकी उनको जरूरत थी। जहाँ निम्न जाति के लोग जाति–पात का भेदभाव सह रहे थे वही उसी समय में स्त्री तो दोहरा अभिशाप जी रही थी अर्थात् एक तो वह स्त्री थी दूसरा निम्नवर्ग की। बाहर ब्राह्मण समाज में उसे निम्नजाति होने का अपमान सहना पड़ता था तो घर के अन्दर पुरुषसत्ता पर आधारित कामों का बोझ ढोना पड़ता था।

'धर्म विराग और त्याग की भित्ति पर स्थिति संत संप्रदाय के विरागमूलक धर्म में नारी अपने कामिनी रूप तथा प्रलोभनों के साथ अवरोध सहरा थी। विश्व के प्रत्येक राष्ट्र और युग के विरागियों में नारी को तप के मार्ग की बाधा मानकर गर्हित बताया है।'' सदियों से स्त्री को पतन कारिणी निदंनीय एवं त्याज्य समझ जाता रहा है बौद्ध, जैन, नाथ आदि कवियों का मानना है कि पुरुष का यदि स्त्री के साथ सम्बन्ध होगा तो वह योग–मार्ग के नियमों का पालन नहीं कर पायेंगे और उनका नाश हो जाएगा। [1] गोरखनाथ अपनी कृतियों में घोषित करते हैं कि नारी संसर्ग में लीन पुरुष सरिता के तट पर स्थित अनिश्चित जीवन वाले वृक्ष के समान है इसी परम्परा में संतों ने नारी को अविद्या का प्रतीक माया, मोह का आवरण मानकर उसकी भर्त्सना की है।''[2]

स्त्रियों के प्रति संतों का दृष्टिकोण परंपरागत ही रहा है उन्होंने केवल अपनी कविताओं में ईश्वर की महिमा का गुणगान किया। संतों ने स्त्री के विभिन्न रूपों की चर्चा की जैसे कामिनी, माया, स्त्री माया, पत्नी, दासी, पत्नी, दासी, गुरु, पतिव्रता, सती। कबीरदास कहते हैं कि स्त्री तीन गुणों का नाश करती है। वह जिस पुरुष के पास रहती है वह भक्ति, मुक्ति एवं ज्ञान को कभी प्राप्त नहीं कर सकता है।

''नारी नसावै तीनि गुन, जौ नर पासै होई।
भगति, मुकुति, निज ग्यांन में पैसि न सकई कोई।।''[3]

संतों ने केवल स्त्री रूप को वासना, सौन्दर्य का धोखा, भ्रम, नाश आदि के रूप में ही देखना चाहा क्योंकि भारत पुरुषवादी समाज है, संत सुंदरदास भी स्त्री के इन्हीं रूपों को अपनी कविताओं में प्रस्तुत करते हैं।

''सुंदर देह मलीन है, राख्यौ रूप संवारि। ऊपर में कलई करी, भीतर भरो भंगारि।।''[4]
''कंठ में नरक, गाल, चिबुक नरक किबं।

x x x x

हाथ पांडे नख–सिख, नरक दिखाती है।।''[5]

संत दादू दयाल ने भी स्त्री के कामिनी, भागिनी एवं मोहिनी रूप की निंदा की है–

''दादू नारी पुरिष कौ, जाणै जै वसि होई।
पिव की सेवा ना करे, कामणिकारी सोइ।।''[6]

''(दादू) बूड़ि रहा रे बापुरे, माया गृह के कूप। मोहा कनकु अरू कामिनी, नाना विधि के रूप।।''[7]

संत साहित्य में अनेक स्थलों पर माया स्त्री के रूप में चित्रित हुई है। कबीर ने माया के अनेक रूपों में एक रूप स्त्री को माना है।

''जग हट बाड़ा, स्याद, ठग, माया वैसां लाइं। रामचरन नीका गही, जिनि जाइ जनम ठगई।।''[8]

हमारे समाज में सच्ची या अच्छी स्त्री उसी को माना जाता है जो पति की आज्ञा का पालन करे अर्थात् पति उसके साथ कितना भी दुराचार करे, मारे–पीटे लेकिन फिर भी उसे पति की सेवा करनी चाहिए। स्त्री के इसी रूप जिसमें वह केवल पतिव्रता को मानने की चर्चा ये संत कवि करते हैं।

''सै सहोज सोहागणी जिन कउ नदरि करेइं।
समय पधाणहि आपणा तनु–मनु आगे देई।।''[9] (अमरदास)
पतिव्रता ग्रह आपणौं करे खसम की सेव।

x x x x

सोइ सुहागिनि कीजिए, रूप न पीजै छोइ।।''[10] (दादू दयाल)

यह संत स्त्री के पतिव्रता के अगले चारण के रूप में सती प्रथा को मानते है। भारत में पितृसत्ता समाज होने के कारण मध्यकाल में सती प्रथा को अच्छा माना जाता था तथा जहां आज हम इन संतों को समाज सुधारक के रूप में देखते हैं वहीं इन्होंने कभी इस प्रथा को नष्ट करने के
लिए कोई उपदेश या कविता नहीं कि बल्कि उसे और बढ़ाया अपनी कविताओं के माध्यम से।
''डगमग छांड़ि दे मन बौरा।

x x x x

सूरा कहा मरन तैं डरपें, सती न संचै भांड़े''11 (कबीर दास)
मैं अपने साहब संग चली।

x x x x

कहे कबीर, सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली।।[12]

निष्कर्ष

हम देखते हैं कि तत्कालीन समाज में फैले जातिवाद, ब्राह्मण, मुस्लिम के आक्रमण से देश में अनेक अराजकता फैली थी जिसके प्रतिफल अनेक संतों का उद्भव हुआ, जिसमें कबीर सबसे प्रसिद्ध थे किन्तु इन सभी संतों ने जहां जाति–पांति के विरोध में 'मानव धर्म' की स्थापना की, वही स्त्रियों के अस्तित्व के बारे में इनके विचार नकारात्मक ही दिखाई पड़ते है। इसका एक मात्र कारण पितृसत्ता को माना जा सकता है जहाँ स्त्री को पुरुष के नियमों के अनुसार या अधीन देखा जाता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धांत–2, प्रो. सरनाम सिंह शर्मा, पृ. 842 2. भक्ति काव्य में पितृसत्ता और स्त्री विमर्श, शहनाज़ बानो, प्रकाशन–
2. अनिरूद्ध बुक्स, आजादपुर, दिल्ली–110033, पृ. 96 3.
3. वही, पृ. 96
4. वही, पृ. 97
5. वही, पृ. 97
6. वही, पृ. 97
7. वही, पृ. 97
8. वही, पृ. 100
9. वही, पृ. 103
10. वही, पृ. 103
11. वही, पृ. 104
12. वही, पृ. 105